The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 1 | Issue 4 | November 2023
ISSN: 2583-973X
Website: www.theacademic.in

कबीर काव्य की सांस्कृतिक प्रासंगिकता

Dr. Sujata N. Magadum

Principal & Hindi Associate Professor, Government First Grade College,

Sadalaga, Dist: Belagavi, Karnatak

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Keywords :

संत, मध्ययुग, भक्ति, कबीर, समाज, विकृतियों, विरोध, संघर्ष, प्रासंगिकता

ABSTRACT

कबीर युग द्दष्टा कवि थे। उनका व्यक्तित्व तथा उनकी वाणी युगीन परिस्थितियों की देन है। कबीर काव्य आज के दौर में भी बेहद प्रासंगिक है, क्योंकि यह साम्प्रदायिकता, अंधविश्वास, जातिवाद और धार्मिक आडंबरों के खिलाफ खड़ा है। ५०० से अधिक वर्ष पहले गाई गई कबीर की वाणी, समाज में प्रेम, समानता, और मानवता की बहाली का संदेश देती है, जो आज के भौतिकवादी और अशांत विश्व के लिए एक मार्गदर्शक औषधी है। कबीर ने मंदिर-मस्जिद के नाम पर होने वाले दिखावे को नकारा है। आज के साम्प्रदायिक माहौल में, कबीर का "ईश्वर एक है" का संदेश एकता की स्थापना के लिए अनिवार्य है।उन्होंने जाति-पांत का कड़ा विरोध किया और मानव मात्र की समानता पर जोर दिया। उनका काव्य वर्ग-विहीन और शोषण-मुक्त समाज का समर्थन करता है। आज के स्वार्थ पूर्ण माहौल में कबीर की शिक्षाएं दया, संतोष और मधुर वाणी जैसे मूल्यों को याद दिलाती हैं। कबीर का काव्य लोगों को अन्याय के खिलाफ निडर होकर सच बोलने की प्रेरणा देता है, बाहरी क्रियाकांडों की जगह भीतर (मन) में ईश्वर को खोजने का संदेश देता है, जो व्यक्ति को आंतरिक शांति और आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाता है।

मूल-आलेख :

भारतवर्ष बहुभाषीय, बहुसंस्कृतीय विशाल देश है । पूर्व से लेकर पश्चिम तक तथा उत्तर से लेकर दक्षिण तक की इसकी विशालता अखण्ड है । यहाँ विभिन्न भाषाएँ, आचार-विचार, रहन-सहन वाले लोग पाये जाते हैं । तथापि आश्चर्य की बात यह है कि इसकी यह विभिन्नता इसकी एकसूत्रता को कभी बाधित नहीं कर पायी । आदिकाल से लेकर आज तक यही होता रहा है कि एक वैचारिक हवा जो निकल पड़ी सो देश भर में व्याप्त हो गयी । दसवी सदी में राजाश्रयी कवि केवल उत्तर में ही नहीं थे अपितु कन्नड, तमिल, तेलगु भाषाओं में भी थे और इन सब ने आश्रयदाता राजा का गुणगान करते हुए काव्य लिखा । मध्यकाल में जब हिन्दी में भक्ति-साहित्य का निर्माण हो रहा था तब दक्षिण में भी भक्ति की लहर उठी थी, यहाँ भी भक्ति-साहित्य लिखा जा रहा था । अट्ठारहवी सदी में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव को भी सभी भारतीय भाषाओं ने एक साथ ग्रहण किया, आजादि की लड़ाई से सभी एक समान प्रेरित हुए, देशप्रेम से भरे गीत सभी ओर लिखे गये, स्वतंत्रता-प्राप्ति की सन्तुष्टि और विभाजन के दुख को सबने एक समान झेला । देश की यह एकसूत्रता कभी किसी चीज़ से बाधित नहीं हुई ।

भारतवर्ष की एकता और इसकी एकसूत्रता को बनाये रखने में, उसे अक्षुण्ण सिद्ध करने में जिन महीषियों ने अपना जीवन गलित किया उनमें एक अत्यन्त प्रमुख नाम सन्त कबीरदास का है । कबीर का अध्ययन एक प्रकार से सम्पूर्ण संत साहित्य का अध्ययन है । संत निर्गुणवादी थे, निराकार ब्रह्म के उपासक थे । किन्तु उनकी दृष्टि अन्य सभी भक्त कवियों से अधिक समाजोन्मुखी थी, इस बात को कदापि नकारा नहीं जा सकता । इसलिये इनके विचार आज भी हर दृष्टि से - धर्म, अध्यात्म, समाज, राजनीति, कला, भाषा, साहित्य - प्रासंगिक हैं ।

कबीर की सांस्कृतिक प्रासंगिकता को केवल एक ही दृष्टि से देखने का प्रयास अपने आप में बहुत संकुचित प्रयास कहलायेगा । क्योंकि कबीर मुख्य रूप से अध्यात्म के साधक तो थे ही, किन्तु इस से भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वे अपने समय की धार्मिक, सामाजिक स्थितियों के रिपोर्टेर तथा उन स्थितियों में सुधार की प्रबल इच्छा करनेवाले महत्वाकांक्षी तथा पथ-प्रदर्शक प्रवादी थे । यों संस्कृति हर उस वस्तु का मिश्रण तथा सुधरा हुआ रूप है जो समाज में मौजूद है । किन्तु इस संस्कृति में भी कुछ ऐसी विकृतियाँ थीं जो समाज के लिये कलंक थीं और जिनके सुधार की आवश्यकता कबीर ने सबसे ज्यादा महसूस की । कहना होगा कि वे विकृतियाँ कमोबेश आज भी मौजूद हैं । आज कबीर हमें उस समय बहुत याद आते हैं जब इन विकृतियों के ख़िलाफ़ कोई आवाज़ बोलती नज़र नहीं आती । कबीर की आवश्यकता इस कदर महसूस करना इस बात का सशक्त प्रमाण है कि कबीर आज भी प्रासंगिक हैं ।

संतों के धर्म सम्बंधी विचार आज के मनुष्य के लिये अत्यंत उपयुक्त हैं । व्यक्ति जीवन में 'धर्म' का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है । जिस निर्गण की उपासना पर संतों ने बल दिया उसमें भी भक्ति की प्रधानता है । बाह्याडंबर को छोड़कर सच्ची भक्ति को अपनाने की जो बात कबीर ने कही उसके पीछे समाज को सही मार्ग पर ले जाने का महानतम उद्देश्य निहित है । भवसागर के पार जाने के लिए किये जानेवाले अन्य सभी प्रयासों को निरर्थक बताते हुए कबीर ने एक मात्र भक्ति को श्रेष्ठ मानते हुए कहा -

जब लग भाव भगति नहीं करिहौं
तब लग भवसागर क्यूँ त
भाव भगति बिसवास बिनु, कहै न संसै मूल
कहै कबीर हरि भगति बिन मूकति नहीं रे मूल [१]

कबीर भक्ति के साथ मुक्ति की बात पर भी इसलिये बल देते हैं क्योंकि भक्ति करने के मूल में मनुष्य की मुक्ति की कामना निहित होती है । भक्ति को मुक्ति का साधन मानते हुए भी मनुष्य भक्ति की सही राह नहीं ढूंढ़ पाता । अपनी अंतरात्मा में छिपे ईश्वर को भुलाकर मंदिर - मसजिद में, योग - विराग में उसकी तलाश को वे निरर्थक मानते हैं । इश्वर को बाहर तलाशने की यह प्रवृत्ति आज भी समाज में देखी जा सकती है । पूजा-पाठ, होम-हवन, मन्त्र-तन्त्र, नदि-स्नान, जप-तप का दिखावा आज भी है । अतः कबीर की ये पंक्तियाँ " मोको कहाँ ढूंढे बंदे मैं तो तेरे पास में.....न मैं मंदिर, न मैं मसजिद, न काबे कैलाश में," आज भी उपयुक्त लगती हैं तो इसमें आश्चर्य नहीं । भारत देश में आज जो हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, सिख, इसाई, जैन आदि धर्मों के लोगों में धार्मिक भिन्नता, वैचारिक भिन्नता, आचरण भेद, संघर्ष दिखायी दे रहा है इसके कारण समाज की, देश की शांति तथा एकता भंग हो रही है । इस धर्म-भेद को मिटाकर एकता स्थापित करने का सन्देश कबीर ने उसी समय दिया था ।

आज मनुष्य के जीवन में अर्थ या 'धन' की महत्ता इतनी बढ़ गयी है कि उसके बिना जीवन की कल्पना असंभव-सी हो गयी है । धन प्राप्ति के हर योग्य, अयोग्य तरीके को अपनाया जा रहा है । धन कमाने के लिये मनुष्य चोरी, अपहरण, मारा-मारी, हत्या तक करने से पीछे नहीं हटता । धन संचय की ऐसी प्रवृत्ति की कबीर ने कडी निन्दा की है -

कबीर सो धन संचिये जो आगे कूं होई
सीस चढ़ाये पोटली ले जात न देख्या कोई [२]

धन समाज को वर्गों में विभाजित करता है । अमीर - गरीब का भेद उत्पन्न करनेवाला यही धन है । पैसे के आधार पर मनुष्य को छोटा या बड़ा समझने की भूल की जा रही है । कबीर ने कहा था -

निर्धन आदर कोई न देई, लाख जतन ओहु चित न धरेई
जो निर्धन सरधन कै जाई, आगै बैठ पीठ फिराई [३]

समाज में गरीब की निन्दा और धनवान की ख़ुशामदी हमेशा होती है । धन के सम्मुख गुण को नगण्य मानने की इस आदिम प्रवृत्ति से कबीर अनभिन नहीं थे ।

कबीर समाज सुधारक थे या नहीं इसका निर्णय विद्वज्जन कर लें किन्तु कबीर ने ऐसी बहुत-सी बातें कही जिनका उपयोग करने पर समाज का सुधार हो सकता है । सर्वप्रथम उन्होंने बाह्याचार की निरर्थक पूजा विचारहीन संस्कारों का विरोध किया । "पाहन पूजै हरी मिलै तो मैं पूजूँ पहार" या " तिस पर चढ़िके मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय" आदि उक्तियाँ इसी बाह्याचार के विरोध में कही गयी थीं । बाह्याचरण को छोड़कर अन्तर्मन में ईश्वर को ढूंढ़ने का ऐसा उपदेश 'कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढ़े बन माही, ऐसे घट घट राम हैं । वही व्यक्ति दे सकता है जिसने स्वयं इस दिशा में प्रयास किया हो, साधना की हो । कबीर साधक भक्त कवि थे ।

कबीर ने किसी विशेष धर्म, सम्प्रदाय की स्थापना नहीं की । भारतीय समाज के लिये इससे बड़ा महदुपकार और क्या हो सकता है? क्योंकि इस देश में पहले से ही अनेक धर्म, जातियाँ, सम्प्रदाय मौजूद हैं । इनमें भी तालमेल

का अभाव है और इस कारण सामाजिक वातावरण कलुषित हो गया है । कबीर ने मौजूदा धर्मों में ही समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया ताकि सामाजिक माहौल में कुछ सुधार आ जाये । आजकल के धर्मगुरु कबीर का एक प्रतिशत भी अनुकरण करते हैं तो समाज पर उनका बड़ा उपकार होगा ।

कबीर में ऐसी बहुत-सी विशेषताएँ हैं जो आजकल के कवियों, साहित्यकारों को प्रेरित कर सकती हैं । कबीर ने जिस पैनी दृष्टि से अपन युग के समाज को देखा, उसकी कमियों पर ग़ौर किया, सुधार का मार्ग दिखाया - यह कम प्रयासदायी काम नहीं है । इसकेलिए उन्होंने समाज के दो प्रमुख धर्मों का, धर्म-नेताओं का विरोध मोल लिया । इसकेलिए बड़ी आतशक्ति की आवश्यकता होती है । आज के साहित्यकारों को कबीर से यह सीख लेनी है कि साहित्य का निर्माण विशेष आत्मशक्ति के साथ ही किया जा सकता है । एकांगी दृष्टि को लेकर लिखा जानेवाला साहित्य समाजोनुखी नहीं हो सकता । और समाज से विमुख, आत्मकेंद्रित साहित्य श्रेष्ठ साहित्य नहीं हो सकता ।

भाषा-प्रयोग के विषय में कबीर बेजोड़ थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें इसीलिए 'वाणी का डिक्टेटर' कहा । सीधी-सादी लगनेवाली भाषा द्वारा असीम, अनंत, ब्रह्मानन्द के निगूढ़ तत्वों को मूर्तिमान करना एक मात्र कबीर से ही संभव था । अपने आपको 'कलम गह्यो नहि हाथ, मसि-कागज छूयो नहि' कहनेवाले कबीर ने संस्कृत, के साथ-साथ अपने समय की अन्यान्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग अपने पदों में किया । "कबीर ने शास्त्रीय भाषा का अध्ययन नहीं किया था, पर फिर भी उनकी भाषा में परंपरा से चली आयी विशेषताएँ वर्तमान हैं" ४ । यह उनके लोकनान का परिचायक है । वर्तमान साहित्यकारों को कबीर से यह भी सीखना है कि साहित्य सर्जना के लिए लोकनान अत्यंत आवश्यक है । कबीर इस दृष्टि से भी अनुकरणीय हैं, प्रासंगिक हैं ।

उपसंहार

कबीर का समाज जात-पांत, छुआछूत, धार्मिक पाखंड, मिथ्याडंबरों, रुढ़ियों, अंधविश्वासों, हिन्दू-मुस्लिम वैमनष्य, शोषण-उत्पीड़न आदि से त्रस्त तथा पथभ्रष्ट था। समाज के इस पतन में धर्म, धर्मशास्त्रों तथा धर्म के ठेकेदारों की अहम भूमिका थी। कबीर ने समय की नस को पहचाना। समाज के मार्गदर्शन हेतु एक बड़े संघर्ष एवं परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की। तत्कालीन विकृतियों और विसंगतियों के खिलाफ लड़ने की अथक दृढ़ता एवं सत्य की साधना का अदम्य साहस उन्हें जीवनानुभवों से मिला। उन्होंने जिन सामाजिक, सांस्कृतिक विषमताओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया, वे आज भी यथावत हैं। कबीरदास का वैचारिक आंदोलन आज भी वर्ग-विहीन समाज के निर्माण, मानवता की बहाली, प्रेम, हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द, आडंबरहीन भक्ति तथा नैतिकता के निर्माण के लिए नितांत प्रासंगिक है। कबीर धर्म, अर्थ, मुक्ति, बाह्याचरण, ईश्वर प्राप्ति, योग आदि की बातें इतने सहज ढ़ंग से करते हैं कि वे बातें दुरुह नहीं लगतीं । कबीर ने समाज में रहते हुए जिन स्थितियों का सामना किया था वे स्थितियाँ आज भी हैं । अतः आज भी बीच बाजार खड़े होकर सबको खरी-खोटी सुनानेवाले, सबको भक्ति-तत्व की व्याख्या बतानेवाले, बाह्याचार के जंजालों को निरर्थक सिद्ध करनेवाले, अपनी वाणियों द्वारा मृत समाज को प्राणवान बनानेवाले, सर्व-धर्म समन्वयकारी, हिन्दू-मुस्लिम एकता का सन्देश सुनानेवाले कबीर की प्रासंगिकता ज्वलंत है ।

सहायक ग्रंथ सूची:

1) कबीर ग्रंथावली रमैणी, रमेशचन्द्र शर्मा, पृ.सं 117
2) संतबानी संग्रह, भाग 2, पृ. सं 27
3) कबीर ग्रंथावली, डा. दास, पद 130
4) हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग 4, पृ. सं 371